

“भो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो ।” , बस इसे एक सांस में पढ़ जाईये



भारत अपने अधोपतन के कालखंड से गुजर रहा था। अकबर द्वारा मुगलिया सल्तनत के पाये भारत की जमीन में गाड़े जा चुके थे। दासता के साथ साथ हिंदुओं में मुस्लिम कुसंग से विलासिता व व्यभिचार भी पनप रहा था।

इस विदेशी सत्ता का प्रतिरोध राजनैतिक रूप से मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश के नेतृत्व में और सांस्कृतिक रूप से रामानंद, वल्लभाचार्य, कबीर, रैदास, तुलसी, मीरा, सूर आदि द्वारा किया जा रहा था परंतु फिर भी दासता का भाव गहराता जा रहा था और साथ ही बढ़ता जा रहा था हिंदू जाति का चारित्रिक पतन जो मुगल सत्ता के हरेक शहरी केंद्र में तवायफों व वेश्याओं के कोठों की बढ़ती संख्या में स्पष्ट दिख रहा था और मुगलिया सत्ता के मुख्य केंद्र आगरा में तो यह चरम पर था।

और उसी आगरा में एक शाम हर रोज की तरह तंग और बदनाम गलियों में शाम से ही ‘रंगीन रातों’ का आगाज हो चुका था। कोठों से श्रृंगार रस की स्वर लहरियाँ उठ रहीं थीं।

ऐसी ही गली से दैववश साधारण वस्त्रों में एक असाधारण पुरुष गुजर रहा था। साधारण नागरिकों के वस्त्रों में भी उसके चेहरे की आभा उसके तपस्वी व्यक्तित्व होने की घोषणा कर रही थी। वह कुछ गुनगुनाते हुये जा रहा था।

“उफ ये आखिरी पंक्ति पूरी ही नहीं हो पा रही है इतने दिनों से” वह झुंझलाकर स्वगत बड़बड़ाया।

और तभी रूप और संगीत के उस बाजार के एक कोठे से एक मधुर स्वर उठा। मधुर स्वरलहरियाँ उसके कानों में पड़ीं और वह उस आवाज को सुनकर जैसे चौंक उठा। लंबे लंबे डग भरते उसके पैर सहसा ठिठक गये।

ऐसी अद्भुत आवाज ?

रूप और वासना के इस बाजार में ??

उसके कदम स्वरों की दिशा में यंत्रचलित अवस्था में खिंचने लगे।

स्वर जितने अधिक स्पष्ट होते गये वह उतना ही अपने भीतर डूबता चला गया। अंततः उसके पग उन

स्वरों के उद्गमस्थल पर पहुँच कर रुक गए।

एक गणिका का कोठा।

और फिर उपस्थित हो गया एक अद्भुत दृश्य ..

बदनाम कोठे के नीचे एक खड़ा एक पुरुष, कर्णगह्वरों से होकर आत्मा की गहराइयों तक उतरती स्वरलहरियों में डूबा, भाव विभोर और अर्धनिमीलित नेत्रों से अपने अश्रुओं को उस आवाज पर न्योछावर सा करता हुआ।

गीत अंततः अवरोह की ओर आता हुआ पूर्ण हुआ और उसके साथ ही उस अद्भुत पुरुष की भावसमाधि भी टूट गयी। कुछ क्षणों तक वह सोच विचार करता खड़ा रहा और फिर कुछ निश्चय कर कोठे की सीढ़ियां चढ़ने लगा।

कोठे के कारिदों से व्यवहार के बाद कुछ क्षण उपरांत उसे गणिका के सम्मुख पहुंचा दिया गया।

पुरुष ने गणिका पर दृष्टिपात किया।

चंपक वर्ण, तीखी नासिका, उत्फुल्ल अधर, क्षीण कटि और जगमगाते वस्त्राभूषणों में लिपटा संतुलित सुगठित शरीर।

गणिका का सौंदर्य उसके स्वरसंपदा के ही समान मनोहारी था परंतु सर्वाधिक विचित्र थी उसकी आंखें। बड़ी बड़ी आंखें जिनमें एक अबूझ गहराई थी जो उसकी गणिका सुलभ चंचलता से मेल नहीं खाती थीं। आगुंतक पुरुष भी गणिका के चेहरे पर अपलक कुछ ढूँढता, खोया सा स्तंभ के सहारे खड़ा रहा जबकि गणिका कनखियों से अपने संभावित नये ग्राहक को 'तौलती' हुई अपने प्रारंभिक ग्राहकों को बीड़े देकर उन्हें विदा कर रही थी।

जब अंतिम व्यक्ति भी चला गया तब वह आगुंतक पुरुष की ओर उन्मुख हुई और अपने पेशे के अनुरूप नजाकत भरी अदाओं के साथ आदाब पेश किया।

“ये नाचीज आपकी क्या खिदमत कर सकती है हुजूर ?”

“तुम्हारा नाम क्या है ?” बिना दृष्टि हटाये हुए पुरुष ने पूछा।

“रामजनी बाई”

“आवाज और सौंदर्य के साथ तुम्हारा नाम भी उतना ही सुंदर है देवि।”

गणिका इस तरह की प्रशंसा के लिये अभ्यस्त थी परंतु उसे अपलक देखे जा रहे इस अजीब पुरुष के इन स्वरों में एक अंतर वह स्पष्ट अनुभव कर रही थी। इस पुरुष की आंखों में अन्य पुरुषों के विपरीत कामुक चमक और स्वरों में कामलोलुपता युक्त दैन्यता का पूर्ण अभाव था।

गणिका आगुंतक के व्यक्तित्व से प्रभावित हो उठी।

“शुक्रिया, आइये तशरीफ़ रखिये” उसने स्वयं को संभाला और अपने ग्राहक को एक मसनद पर विराजने हेतु आमंत्रित किया।

आगुंतक अपने स्थान पर अविचल रहे।

“नहीं, मैं तो यहां नहीं बैठ सकूंगा पर क्या तुम मेरे साथ चलकर मेरे ठाकुर के लिए गा सकोगी?” आगुंतक ने गंभीर स्वर में पूछा।

गणिका को बहुत ज्यादा आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि उस समय जमींदार या राजे रजवाड़ों के पास ऐसे कारिदों की फौज हुआ करती थी, जो अपने मालिक के ‘शौक की पूर्ति’ के लिये नित नयी वारांगनाओं को ढूढते रहते थे और ये भी शायद ऐसा ही कोई कारिदा होगा हालांकि आगुंतक की अतिगंभीर छवि और चेहरे का सात्विक तेज ऐसे किसी विचार का निषेध करते थे।

“जैसा हुजूर चाहें। पर ये नाचीज हवेलियों पर मुजरा करने के लिये 100 अशर्फियाँ लेती है।” तिरछी कुटिल चितवन के साथ गणिका ने अपना शुल्क बताया।

पुरुष शुल्क सुनकर भी अप्रभावित रहा और बिना कुछ कहे अपने अंगरखे को टटोला और अशर्फियों से भरी थैली गणिका की ओर उछाल दी।

कुछ देर बाद मथुरा की ओर दो घोडागाड़ियाँ जा रहीं थीं। एक गाड़ी में तबलची, सारंगीवान और सितारवादक अपने साजों के साथ तुंसे हुये थे और दूसरी गाड़ी में गणिका अपने उस असाधारण ग्राहक के साथ बैठी थी।

“आपके ठाकुर का ठिकाना क्या है?” वेश्या ने पूछा।

“ब्रज” संक्षिप्त उत्तर आया।

क्षणिक चुप्पी के बाद पुनः गणिका ने कटाक्षपूर्वक पूछा,

“और आपका नाम?”

“कृष्णदास”

“आपके ठाकुर क्या सुनना पसंद करेंगे?”

“कुछ भी जो हृदय से गाया जाये”, पुरुष रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कुराया।

“फिर भी?”, उलझी हुई गणिका ने पुनः आग्रह किया।

“अच्छा ठीक है, तुम मेरे ठाकुर को यह सुनाना” उन्होंने अपने मधुर गंभीर स्वर में गुनगुनाना शुरू कर

दिया।

“अरे यह तो भजन है।” गणिका बोल उठी।

“हाँ, तुम्हें इसे गाने में कठिनाई तो नहीं होगी?” स्वरो को रोककर वह फिर मुस्कराया।

भजन ब्रज भाषा में था और बहुत सुंदर था।

“किसने लिखा है?”

“मैंने” उन्होंने जवाब दिया।

“ओह तो ये कविवर इस भजन को मेरे माध्यम से अपने मालिक को सुनाकर उनकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं।” गणिका ने सोचा।

ब्रज क्षेत्र में अकबर की मनसबदारी प्रथा के कारण उस समय कुकुरमुत्तों की तरह नित नये ‘राजा साहबों’ का उदय हो रहा था जिनमें अधिकांशतः विलासी और कामुक चरित्र के थे और इसीलिये संपूर्ण ब्रज क्षेत्र में महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा जनसामान्य में बहाई भक्तिरस की धारा के साथ साथ समांतर रूप से जागीरदारों के विलास की धारा भी बह रही थी और संगीत दोनों समांतर धाराओं को जोड़ने वाली कड़ी थी।

उस युग में धनाढ्य वर्ग में यद्यपि फारसी-उर्दू का प्रचलन व शायरों की गजलों का प्रभुत्व था और गजलों की प्रतिष्ठा राजदरबारों और गणिकाओं के कोठों पर प्रसिद्धि पर निर्भर करती थी हालांकि सूरदास और तुलसीदास की रचनाएं अपवाद थीं जो जनमानस के होंठों व हृदय में बसी हुई थीं और कई गणिकायें कभी कभी व्यक्तिगत भाव सुख के लिये या कभी कभी अपने ग्राहकों की मांग पर इन भक्तिगीतों को भी गाती थीं। यह गणिका भी उसी वर्ग से थी।

पुरुष पुनः अपना भजन गुनगुनाने लगा और गणिका तन्मयता से सुनकर शब्दों, ताल, राग, आरोह अवरोह आदि को स्मृतिबद्ध करती रही।

अंततः 5 घंटे बाद लगभग अर्धरात्रि से कुछ पूर्व उन्होंने मथुरा में प्रवेश किया और कुछ पलों बाद पुरुष के निर्देशानुसार एक मंदिर के सामने गाड़ियां रोक दी गयीं।

पुरुष नीचे उतरा और सभी को नीचे उतरने का निर्देश दिया। वह स्वयं मंदिर के सिंहद्वार की ओर बढ़ा और जेब से कुंजी निकालकर उसकी सहायता से कपाट खोल दिये।

“अंदर आओ” उसने इशारा किया।

“मंदिर में?” गणिका आश्चर्यचकित व संकुचित हो उठी।

“अंदर आ जाओ, संकुचित होने की आवश्यकता नहीं है” पुरुष ने साधिकार आदेश दिया।

उलझन में भरी गणिका और उसकी मंडली अंदर आ गयी ।

“मैं चादरें और मसनद बिछवाता हूँ, तुम अपने साज जमा लो”

“यहां ? यह एक मंदिर है । लोग क्या कहेंगे हुजूर ? ?” गणिका अब भयग्रस्त हो उठी ।

“कोई कुछ नहीं कह सकेगा । मेरे ठाकुर ने मुझे सारे अधिकार दे रखे हैं ।” उन्होंने सबको आश्वस्त करते हुए कहा ।

“सच बताइये आप कौन हैं ?”

“इस मन्दिर का मुख्य प्रबंधनकर्ता और मुख्याधिकारी कृष्णदास” उन्होंने उत्तर दिया ।

गणिका आश्वस्त तो हुई परंतु उसकी उलझन मिटी नहीं । कैसा है ये व्यक्ति जो इस पवित्र स्थान का प्रयोग अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करनी के लिए कर रहा है और कैसा है इनका ‘ठाकुर’ जो इस पवित्र स्थान में मुजरा सुनने का आकांक्षी है ? इसी उधेड़बुन में डूबी वह अपना श्रंगार व्यवस्थित करने एक ओर चली गयी जबकि कृष्णदास व साजिंदे दीपों को प्रज्वलित कर बिछावन बिछाने लगे ।

अंततः पूरा मंदिर पुनः दीपों से जगमग होने लगा और साजिंदों ने अपने साज जमा लिये । गणिका भी अपने पूर्ण श्रंगार और मोहक रूप में प्रस्तुत थी ।

“आपके ठाकुर नहीं पधारे अभी तक ?” उसने अपनी मोहक मुस्कुराहट के साथ पूछा ।

“वे तो यहीं हैं ”

“कहाँ ?”

इस प्रश्न के उत्तर में कृष्णदास उठे, गर्भगृह की ओर बढ़े और पट खोल दिये ।

दीपकों के झिलमिल प्रकाश में वहां कान्हाजी अपने पूर्णश्रंगार में विराजमान थे ।

“यही हैं मेरे ठाकुर”

हतप्रभ स्त्री की निगाहें कृष्ण के श्रीविग्रह से टकराई ।

जन्म जन्मांतरों के पुण्य प्रकट हो उठे ।

वह चित्रवत जड़ हो गई, कृष्ण छवि में खो गई, बिक गई ।

समय उन पलों में जैसे ठहर गया ।

“गाओ देवी, कान्हा तुम्हें सुनने का इंतजार कर रहे हैं ” कृष्णदास की गंभीर वाणी गूंजी ।

गणिका के लिये समस्त संसार जैसे अदृश्य हो गया और वह बावली हो उठी। उसकी आँखों में अब केवल कृष्ण की छवि थी और कर्ण गह्वरों में सिर्फ एक ध्वनि ..

“कान्हा तुम्हें सुनने का इंतजार कर रहे हैं ”

उसकी आंखें भर आई और आत्मा की गहराइयों से मधुर तान फूट निकली।

साजिंदों ने स्वर छेड़ दिये।

कृष्णदास के सिखाये भजन के स्वर गूँज उठे।

“मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो।”

स्त्री उन शब्दों में जैसे डूब गई। वह बार बार उन्हीं पंक्तियों को दुहरा रही थी।

“मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो।”

संगीत की ध्वनि, भावविभोर स्वर .. लोगों की निद्रा टूट गयी और वे आश्चर्यचकित मंदिर में आने लगे।

दृश्य अवांक्षित परन्तु अपूर्व था।

जनवृन्द का सात्विक रोष गणिका के भावसमुद्र में उतराते शब्दों के साथ बह गया।

गणिका ने भजन की अगली पंक्तियाँ उठाईं।

“ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै”

“ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै
चिबुक चारु गडि ठठक्यो”

मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो।

मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो।।

समस्त जन उन क्षणों में, उन भावभरे शब्दों में जैसे कृष्ण का साक्षात् दर्शन कर रहे थे। गणिका आगे बढ़ी—

“सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै,

“सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै

फिर चित अनत न भटक्यो।”

लोगों की आंसुओं की धारायें बह उठी। समस्त जनवृन्द गा उठा, एक बार, दो बार, बार बार ...

“.....फिर चित अनत न भटक्यो
.....फिर चित अनत न भटक्यो...
.....फिर चित अनत न भटक्यो

गणिका अपने ही भावसंसार में थी। भावों की चरमावस्था में उसकी आंखें कृष्ण की आंखों से जा मिलीं।

गणिका ने और गाना चाहा पर उसके होंठ कुछ थरथराकर शांत हो गये और आंखें कृष्ण की आंखों में अटक गयीं। कृष्ण की आंखों में उसे आमंत्रण दिखाई दे रहा था, उसकी आत्मा विकल हो उठी और अपने स्थान पर बैठे ही बैठे उसने अपनी भुजा कातर मुद्रा में कृष्ण की ओर फैला दी।

उसने कान्हाजी के चेहरे पर मुस्कराहट देखी और वह पूर्ण हो उठी। डबडबाई आंखों से अंततः अश्रुओं की दो धाराएं बह निकलीं और अगले ही क्षण वह भूमि पर निश्चेष्ट होकर गिर गई।

भीड़ शांत स्तब्ध हो गई। इस गहन स्तब्धता को कृष्णदास की पगध्वनि ने भंग किया। उन्होंने रामजनी की निश्चल देह को भुजाओं में उठाया और कान्हा के श्रीविग्रह की ओर बढ़ चले।

मृत देह कृष्ण चरणों में अर्पित हुई।

जीवनपुष्प कृष्णार्पित हुआ।

जीवन, निर्माल्य बनकर कृतार्थ हुआ।

.....और डबडबाई आंखों से कृष्णदास ने अपने अधूरे भजन की पंक्तियाँ पूर्ण कीं —

‘कृष्णदास किए प्रान निछावर,
यह तन जग सिर पटक्यो ॥

सोशल मीडिया से प्राप्त